उच्च न्यायालय पटना में

आपराधिक विविध वाद सं0– 34165/2016

पीएस मामला सं0–1175 वर्ष–2012 थाना–नालंदा शिकायत मामला जिला–नालंदा

= = = =

पटना उच्च न्यायालय के निर्णय/आदेश

= = = =

डी0 वाई 0 एस 0 पी0 पुलिस में थे, आमतौर पर शिकायतकर्ता–विरोधी पक्ष को धमकी देकर अपने साथ ले जाते थे। विरोधी पक्ष सं 2 और उसके परिवार के सदस्यों ने, उसके बाद, उसने उसके और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ यातना का झूठा मामला दर्ज कराया। शिकायतकर्ता ने आगे आरोप लगाया कि वह अदालत के आदेश से पिछले डेढ़ साल से अपने ससुराल में रह रही थी।

4. शुरुआत में, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री राजेंद्र नारायण ने प्रस्तुत किया कि पहले उसी विवादित आदेश के खिलाफ, रद्द करने वाली याचिका टोकन संख्या 4432/2016 के माध्यम से दायर की गई थी, लेकिन समय के भीतर दोषों को न हटाने के कारण इसे रद्द कर दिया गया था और इस तरह योग्यता पर कोई आदेश नहीं है।

5. याचिकाकर्ता की ओर से बहस करते हुए विद्वान वरिष्ठ वकील ने कहा कि याचिकाकर्ता की बेटी की शादी वर्ष 1999 में शिकायतकर्ता–विरोधी पक्ष सं.2 की गई थी, इस प्रकार, संबंध सुझाव देता है कि याचिकाकर्ता विरोधी पक्ष सं. का ससुर है। 2. यह बताया गया है कि लगभग 10 वर्षों का पर्याप्त समय बीतने के बाद, याचिकाकर्ता की बेटी के बीच कुछ वैवाहिक कलह सामने आई, जिसमें विरोधी पक्ष नं 2 पति, जिसके लिए आई. पी. सी. की धारा 498–ए के तहत गरदानीबाग पी. एस. मामला संख्या 43/2009 याचिकाकर्ता की बेटी द्वारा क्रूरता करने और दहेज की मांग करने के संबंध में दर्ज किया गया था। जब विरोधी पक्ष सं.2 और उसके परिवार के सदस्यों ने अपनी अग्रिम जमानत के संबंध में अदालत का दरवाजा खटखटाया, एक समझौता किया गया जिसमें याचिकाकर्ता की बेटी विरोधी पक्ष सं 2 थी लेकिन छह महीने बीतने के बाद फिर से वैवाहिक कलह सामने आई, और अब, इस बार, याचिकाकर्ता की बेटी को इस हद तक प्रताड़ित किया गया कि उसकी गर्भावस्था को जबरन समाप्त कर दिया गया। उपरोक्त तथ्य के साथ, वर्ष 2011 में विद्वत निचली अदालत के समक्ष जमानत रद्द करने की याचिका भी दायर की गई थी, जो अभी भी लंबित है क्योंकि विरोधी पक्ष सं.2 वर्ष 2012 में शादी करने के बाद फरार है।

6. याचिकाकर्ता विद्वान वरिष्ठ वकील श्री नारायण, ने प्रस्तुत किया कि जब याचिकाकर्ता की बेटी ने जमानत रद्द करने के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाया, तो विरोधी पक्ष नं 2, उस समय तक, याचिकाकर्ता और उसकी पत्नी सहित उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ आई. पी. सी. की धारा 379 के तहत किए गए कथित अपराधों के लिए 2011 का सोहसराय पी. एस. मामला संख्या 81 वाला एक पुलिस मामला भी दर्ज किया गया था, ताकि 2009 के गर्दानीबाग पी.

एस. मामला संख्या 43 में समझौता करने के लिए कानूनी दबाव बनाया जा सके, लेकिन निष्पक्ष जांच के बाद, पुलिस ने अंतिम प्रपत्र जमा करके याचिकाकर्ता और अन्य अभियुक्त व्यक्तियों को दोषमुक्त कर दिया, जहां 13.02.2011 पर एक विरोध याचिका दायर की गई थी, जिसके आधार पर 11.02.2016 को आईपीसी की धारा 504 और 506 के तहत अपराध के लिए संज्ञान का आदेश पारित किया गया था।

7. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दलील दी है कि आरोपित आदेश की भाषा और मामले के तथ्यों से यह कहीं से भी आश्वस्त करने वाला नहीं लगता कि यह आईपीसी की धारा 506 के भाग II से संबंधित मामला है , जिसमें अधिकतम सजा सात साल तक बढ़ाई जा सकती है और इस तरह वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर अधिकतम सजा दो साल से अधिक नहीं है। यही स्थिति संबंधित मामले में भी है, जिसमें आईपीसी की धारा 504 के तहत अपराध किया गया है , जिसमें अधिकतम सजा दो साल की है और दंड प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में 'सीआरपीसी') की धारा 469 के तहत वर्णित तथ्य और कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए , जिस अपराध के खिलाफ विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया गया था, वह सीआरपीसी की धारा 468 के तहत उपलब्ध सीमा अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत आता है।

8. तर्क का समापन करते हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य (1992) सप (1) एससीसी 335** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की कानूनी रिपोर्ट पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि, वर्तमान में ओपी संख्या 2 और याचिकाकर्ता की बेटी के बीच सामने आए वैवाहिक कलह के कारण गुप्त और अप्रत्यक्ष उद्देश्य से दुर्भावनापूर्ण अभियोजन चलाया जा रहा है।

9. राज्य के विद्वान एपीपी ने याचिकाकर्ता की ओर से की गई प्रार्थना का विरोध किया है।

10. विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण कुमार भगत ने आवेदन का विरोध करते हुए कहा कि शिकायत याचिका के विवरण से यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि प्रथम दृष्टया आईपीसी की धारा 504 और 506 के तहत अपराध का मामला बनता है, लेकिन उन्होंने निष्पक्ष रूप से कहा कि इस मामले में विद्वान क्षेत्राधिकारी मजिस्ट्रेट द्वारा लगभग पांच साल बाद संज्ञान लिया गया।

11. कानूनी स्थिति को बेहतर ढंग से समझने के लिए सीआरपीसी की धारा 468 और 469 को पुनः उद्धृत करना उचित होगा , जो इस प्रकार है:

> "468. परिसीमा अवधि बीत जाने के पश्चात् संज्ञान लेने का वर्जन.– (1) इस संहिता में अन्यत्र जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, कोई भी न्यायालय उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट श्रेणी के किसी अपराध का संज्ञान परिसीमा अवधि बीत जाने के पश्चात् नहीं लेगा।
>
> (2) परिसीमा अवधि निम्नलिखित होगी –
>
> > (क) छह माह, यदि अपराध केवल जुर्माने से दंडनीय है;
> >
> > (ख) एक वर्ष, यदि अपराध एक वर्ष से अधिक अवधि के कारावास से दंडनीय है;
> >
> > (ग) तीन वर्ष, यदि अपराध एक वर्ष से अधिक किन्तु तीन वर्ष से अनधिक अवधि के कारावास से दण्डनीय है।
>
> (3) [इस धारा के प्रयोजनों के लिए, उन अपराधों के संबंध में, जिनका एक साथ विचारण किया जा सकता है, परिसीमा अवधि उस अपराध के संदर्भ में अवधारित की जाएगी जो, यथास्थिति, अधिक कठोर दंड से या सर्वाधिक कठोर दंड से दंडनीय है।]
>
> **469. परिसीमा अवधि का प्रारंभ.–**
>
> **(1)** किसी अपराधी के संबंध में परिसीमा अवधि प्रारंभ होगी, –
>
> (क) अपराध की तारीख को; या
>
> (ख) जहां अपराध के किए जाने की जानकारी अपराध से व्यथित व्यक्ति या किसी पुलिस अधिकारी को नहीं थी, वहां वह पहला दिन जिस दिन ऐसे अपराध की जानकारी ऐसे व्यक्ति या किसी पुलिस अधिकारी को मिलती है, जो भी पहले हो; या
>
> (ग) जहां यह ज्ञात नहीं है कि अपराध किसके द्वारा किया गया था, वहां वह प्रथम दिन, जिसको अपराधी की पहचान अपराध से व्यथित व्यक्ति को या अपराध का अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी को ज्ञात हो, जो भी पहले हो।
>
> (2) उक्त अवधि की गणना करते समय, वह दिन जिससे ऐसी अवधि की गणना की जानी है, निकाल दिया जाएगा।"

12. इसके अलावा, भारतीय दंड संहिता की धारा 504 और 506 को भी पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा , जो कि वे अपराध हैं जिनके लिए विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा विवादित आदेश के माध्यम से संज्ञान लिया गया था, जो कि वर्तमान याचिका का विषय है। पूर्वोक्त धाराएँ तत्काल संदर्भ के लिए निम्नानुसार हैं:

> **"504. शांति भंग करने के इरादे से जानबूझकर अपमान करना।** जो कोई जानबूझकर किसी व्यक्ति का अपमान करता है, और उसके द्वारा उसे उत्तेजना देता है, यह इरादा रखते हुए या यह जानते हुए कि ऐसी उत्तेजना से वह सार्वजनिक शांति भंग करेगा, या कोई अन्य अपराध करेगा, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास से, जिसे दो वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।

> **506. आपराधिक धमकी के लिए दंड.**– जो कोई आपराधिक धमकी का अपराध करेगा, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास से, जिसे दो वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा;
>
> **यदि धमकी मृत्यु या गंभीर चोट पहुंचाने आदि की हो** – और यदि धमकी मृत्यु या गंभीर चोट पहुंचाने, या आग से किसी संपत्ति को नष्ट करने, या मृत्यु या आजीवन कारावास या सात वर्ष तक की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध करने, या किसी महिला पर व्यभिचार का आरोप लगाने की हो, तो उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास, जिसे सात वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, या जुर्माना, या दोनों से दंडित किया जाएगा।

13. भजन लाल केस (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की कानूनी रिपोर्ट के पैराग्राफ '102' को पुनः उद्धृत करना समीचीन होगा, जो निम्नानुसार है:

> "102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में, जिन्हें हमने ऊपर उद्धृत और पुन: प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण के तौर पर मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलाइज्ड और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना संभव नहीं हो सकता है और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची दे सकते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।
>
> (1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या अभियुक्त के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है।
>
> (2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईआर के साथ दी गई अन्य सामग्री, यदि कोई हो, में लगाए गए आरोप किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, तो संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के अलावा संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराया जा सकता है।
>
> (3) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के किए जाने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।
>
> (4) जहां, एफआईआर में लगाए गए आरोप एक संज्ञेय अपराध नहीं हैं, लेकिन केवल एक गैर–संज्ञेय अपराध हैं, किसी भी पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी जांच की अनुमति नहीं है, जैसा कि संहिता की धारा 155 (2) के तहत परिकल्पित है।
>
> (5) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिसके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संबंधित संहिता या अधिनियम (जिसके अंतर्गत आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है) के किसी प्रावधान में कार्यवाही शुरू करने और जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है और/या जहां संबंधित संहिता या अधिनियम में पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावकारी निवारण प्रदान करने वाला कोई विशिष्ट प्रावधान है।

(7) जहां आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना निहित हो और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण तरीके से अभियुक्त पर प्रतिशोध लेने के गुप्त उद्देश्य से तथा निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने के उद्देश्य से शुरू की गई हो।"

14. उपर्युक्त कानूनी और तथ्यात्मक प्रस्तुतिकरण के मद्देनजर, संज्ञान की सीमा से संबंधित मुद्दे पर सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में चर्चा करने की आवश्यकता है, जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने जोर दिया है। इस संदर्भ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा " **जापानी साहू बनाम चंद्र शेखर मोहंती** " मामले में तय किए गए कानून को देखना उचित होगा, जिसे **(2007) 7 एससीसी 394** के रूप में रिपोर्ट किया गया था, जहां पैरा 46, 46, 48, 49, 50, 51 और 52 प्रासंगिक प्रतीत होते हैं और वे निम्नानुसार हैं:

"**46.** हम इस तर्क को कायम रखने में असमर्थ हैं। हम अभियुक्त के वकील के तर्क से भी उतने ही प्रभावित नहीं हैं कि भारत दामोदर काले बनाम एपी राज्य, [(2003) 8 एससीसी 559] में निर्णय प्रति अपराध है। हमने उक्त निर्णय का अध्ययन किया है। हमने ऊपर पैराग्राफ 10 भी उद्धृत किया है जिसमें अभियुक्त के तर्क पर इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया था और उसे नकार दिया गया था। यह सच है कि उस मामले में न्यायालय ने अध्याय शीर्षक (अध्याय XXXVI: कुछ अपराधों का संज्ञान लेने की सीमा) से संकेत लेते हुए यह टिप्पणी की थी कि यदि न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 468(2) द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर संज्ञान नहीं लिया जाता है, तो शिकायत को समय-सीमा द्वारा वर्जित माना जाना चाहिए। लेकिन, यह सच नहीं है कि इस न्यायालय ने इस आधार पर उक्त तर्क को खारिज कर दिया। न्यायालय ने संहिता के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार किया और 'विभिन्न प्रावधानों के संचयी पठन' पर विवाद को नकार दिया। न्यायालय ने कहा कि जहां तक किसी अपराध के संज्ञान का सवाल है, यह न्यायालय का कार्य है जिस पर न तो अभियोजन एजेंसी और न ही शिकायतकर्ता का नियंत्रण है। न्यायालय ने प्रसिद्ध कहावत "एक्टस क्यूरी नेमिनम ग्रेवबिट" (न्यायालय का कार्य किसी को भी नुकसान नहीं पहुंचाएगा) का भी उल्लेख किया। यह सभी विचारों का संचयी प्रभाव है जिस पर न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि शिकायत को सीमा अवधि द्वारा वर्जित किया गया है या नहीं, यह तय करने के लिए प्रासंगिक तिथि शिकायत दर्ज करने की तिथि है न कि प्रक्रिया जारी करने या न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने की तिथि।

47. हम भारत दामोदर में निर्धारित कानून से सहमत हैं। हमारे निर्णय में, बॉम्बे उच्च न्यायालय ने कुछ परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भी सही किया, जैसे कि, शिकायतकर्ता द्वारा सीमा की अंतिम तिथि पर शिकायत दर्ज करना, मजिस्ट्रेट की अनुपलब्धता, या उनका अन्य कार्य में व्यस्त होना, शिकायत में लगाए गए आरोपों पर ध्यान देने में मजिस्ट्रेट/न्यायालय की ओर से समय की कमी, धारा 156 की उपधारा (3) या

संहिता की धारा 202 के तहत जांच का आदेश देकर प्रक्रिया जारी करने में देरी, संज्ञान लेने या प्रक्रिया जारी करने पर शिकायतकर्ता या अभियोजन एजेंसी का कोई नियंत्रण नहीं होना, आदि। हमारे लिए, दो चीजें, अर्थात्; (1) शिकायत दर्ज करना या आपराधिक कार्यवाही शुरू करना; और (2) संज्ञान लेना या प्रक्रिया जारी करना पूरी तरह से अलग, विशिष्ट और स्वतंत्र हैं।

48. जहां तक शिकायतकर्ता का सवाल है, जैसे ही वह सक्षम न्यायालय में शिकायत दर्ज करता है, वह वह सब कुछ कर लेता है जो उसे चरण में करना आवश्यक है। उसके बाद, मजिस्ट्रेट को मामले पर विचार करना, अपने विवेक का प्रयोग करना और संज्ञान लेने, प्रक्रिया जारी करने या कानून द्वारा निर्धारित किसी अन्य कार्रवाई का उचित निर्णय लेना होता है। शिकायतकर्ता का उन कार्यवाहियों पर कोई नियंत्रण नहीं होता।

49. कई कारणों से (उनमें से कुछ का उल्लेख उपरोक्त निर्णयों में किया गया है, जो केवल उदाहरणात्मक मामले हैं और प्रकृति में संपूर्ण नहीं हैं), न्यायालय या मजिस्ट्रेट के लिए प्रक्रिया जारी करना या संज्ञान लेना संभव नहीं हो सकता है। लेकिन न्यायालय की ओर से इस तरह की देरी के लिए शिकायतकर्ता को दंडित नहीं किया जा सकता है और न ही उसे संहिता के तहत उचित कार्रवाई करने में मजिस्ट्रेट की विफलता या चूक के कारण अयोग्य ठहराया जा सकता है। जब कोई शिकायतकर्ता कानून द्वारा निर्धारित समय के भीतर न्यायालय से संपर्क करता है तो कोई भी आपराधिक कार्यवाही अचानक समाप्त नहीं की जा सकती है। ऐसे मामलों में, "एक्टस क्यूरी नेमिनम ग्रेवबिट" (न्यायालय का कार्य किसी को भी नुकसान नहीं पहुंचाएगा) सिद्धांत वास्तव में लागू होगा। [देखें अलेक्जेंडर रॉजर बनाम 1999] कॉम्पटॉयर डी'एस्कोम्प्टे, (1871) 3 एलआर पीसी 465] सभी न्यायालयों के पहले और सर्वोच्च कर्तव्यों में से एक यह ध्यान रखना है कि न्यायालय के किसी कार्य से वादी को कोई नुकसान न हो।

50. संहिता पीड़ित पक्ष पर कानून द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर उचित मंच का सहारा लेने का दायित्व डालती है और एक बार जब वह ऐसा कदम उठाता है, तो यह पूरी तरह से अनुचित और अनुचित होगा यदि उसे बताया जाए कि उसकी शिकायत पर विचार नहीं किया जाएगा क्योंकि न्यायालय ने समय सीमा के भीतर कोई कार्रवाई नहीं की है। कानून की ऐसी व्याख्या न्याय को बढ़ावा देने के बजाय अन्याय को बढ़ावा देगी और प्रक्रियात्मक कानून के प्राथमिक उद्देश्य को विफल करेगी।

51. इस मामले को अलग कोण से भी देखा जा सकता है। एक बार यह स्वीकार कर लिया गया (और इस बारे में कोई विवाद नहीं है) कि किसी अपराध का संज्ञान लेना या प्रक्रिया जारी करना शिकायतकर्ता या अभियोजन एजेंसी के अधिकार क्षेत्र में नहीं है और शिकायतकर्ता या अभियोजन एजेंसी केवल शिकायत दर्ज कर सकती है या कानून के अनुसार कार्यवाही शुरू कर सकती है। यदि कार्यवाही शुरू करने की वह कार्रवाई सीमा अवधि के भीतर की गई है, तो शिकायतकर्ता न्यायालय या मजिस्ट्रेट की ओर से प्रक्रिया जारी करने या अपराध का संज्ञान लेने में किसी भी देरी के लिए जिम्मेदार नहीं है। अब, यदि न्यायालय या मजिस्ट्रेट की ओर से चूक, चूक या निष्क्रियता के कारण उसे दंडित करने की मांग की जाती है, तो कानून के प्रावधान को संविधान के अनुच्छेद 14 की कसौटी पर परखना पड़ सकता है। संभवतः यह तर्क दिया जा सकता है कि ऐसा प्रावधान पूरी तरह से मनमाना, तर्कहीन और अनुचित है। यह स्थापित कानून है कि न्यायालय ऐसे प्रावधान की व्याख्या करेगा जो 'लिटरा लेजिस' के नियम को अपनाकर कानून को कमजोर और असंवैधानिक

बनाने के बजाय उचित निर्माण के सिद्धांत को लागू करके कानून की वैधता को बनाए रखने में मदद करेगा। संहिता की धारा 468 में सीमा के प्रावधान को न्यायालय द्वारा आदेश जारी करने या संज्ञान लेने से जोड़ना इसे अस्थिर बना सकता है और संविधान के अनुच्छेद 14 के विरुद्ध हो सकता है।

52. उपरोक्त के मद्देनजर, हम मानते हैं कि सीमा अवधि की गणना करने के उद्देश्य से, प्रासंगिक तिथि को शिकायत दर्ज करने या आपराधिक कार्यवाही शुरू करने की तिथि के रूप में माना जाना चाहिए, न कि मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने या न्यायालय द्वारा प्रक्रिया जारी करने की तिथि के रूप में। इसलिए, हम उन सभी निर्णयों को खारिज करते हैं जिनमें यह माना गया है कि सीमा अवधि की गणना करने के लिए महत्वपूर्ण तिथि मजिस्ट्रेट/न्यायालय द्वारा संज्ञान लेना है, न कि शिकायत दर्ज करने या आपराधिक कार्यवाही शुरू करने की तिथि।"

15. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अमृतलाल बनाम शांतिलाल सोनी और अन्य के मामले में (2022) 13 एससीसी 128** में इसी मुद्दे पर बहुत विस्तार से विचार किया, जहां पैरा 9, 10 और 11 प्रासंगिक प्रतीत होते हैं, जो इस प्रकार हैं:

> **9.** सारा मैथ्यू [सारा मैथ्यू बनाम इंस्टीट्यूट ऑफ कार्डियो वैस्कुलर डिसीज़, (2014) 2 एससीसी 62: (2014) 1 एससीसी (सीआरआई) 721] में, इस न्यायालय की संविधान पीठ ने दो प्रश्नों की जाँच की: (एससीसी पृ. 73–74, पैरा 3) "3. कोई विशिष्ट प्रश्न हमें नहीं भेजे गए हैं। लेकिन, हमारी राय में, हमारे विचार के लिए निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं:
>
> > 3.1. (i) क्या धारा 468 सीआरपीसी के तहत सीमा अवधि की गणना के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक तारीख शिकायत दर्ज करने की तारीख है या अभियोजन शुरू करने की तारीख है या क्या प्रासंगिक तारीख वह तारीख है जिस दिन मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेता है?

(ii) दो मामलों में से कौन सा यानी कृष्णा पिल्लई [कृष्णा पिल्लई बनाम टीए राजेंद्रन, 1990 सप एससीसी 121: 1990 एससीसी (क्रि) 646] या भारत काले [भारत दामोदर काले बनाम एपी राज्य, (2003) 8 एससीसी 559: 2004 एससीसी (क्रि) 39] (जिसका अनुसरण जापानी साहू [जापानी साहू बनाम चंद्रशेखर मोहंती , (2007) 7 एससीसी 394: (2007) 3 एससीसी (क्रि) 388] में किया गया है), सही कानून बताता है? "

> **10.** संविधान पीठ ने उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिए: (सारा मैथ्यू मामला [सारा मैथ्यू बनाम इंस्टीट्यूट ऑफ कार्डियो वैस्कुलर डिसीज़, (2014) 2 एससीसी 62: (2014) 1 एससीसी (Cri) 721], एससीसी पृष्ठ 102, पैरा51)
>
> > "51. उपर्युक्त के मद्देनजर, हम मानते हैं कि धारा 468 सीआरपीसी के तहत सीमा की अवधि की गणना करने के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक तारीख शिकायत दर्ज करने की तारीख या अभियोजन शुरू करने की तारीख है

> न कि वह तारीख जब मजिस्ट्रेट संज्ञान लेता है। हम आगे मानते हैं किभरत काले [भरत दामोदर काले बनाम एपी राज्य, (2003) 8 एससीसी 559: 2004 एससीसी (क्रि) 39] जिसका जापानी साहू [जापानी साहू बनाम चंद्रशेखर मोहंती, (2007) 7 एससीसी 394: (2007) 3 एससीसी (क्रि) 388] में पालन किया गया है, सही कानून बताता है।कृष्णा पिल्लई [कृष्णा पिल्लई बनाम टीए राजेंद्रन, 1990 सप एससीसी 121, 1990 एस सी सी (सी आर आइ) 646] को अपने तथ्यों तक ही सीमित रहना होगा और यह इस प्रश्न पर निर्णय करने वाला प्राधिकारी नहीं है कि धारा 468 सीआरपीसी के तहत सीमा अवधि की गणना करने के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक तारीख क्या है।"

(जोर दिया गया)

11. इसलिए, सारा मैथ्यू मामले में संविधान पीठ द्वारा कानून की घोषणा और घोषणा [सारा मैथ्यू बनाम कार्डियो वैस्कुलर डिजीज संस्थान (२०१४) २ एससीसी ६२: (२०१४) १ एससीसी (क्रि) ७२१], इस बारे में कोई संदेह नहीं रखती कि धारा ४६८सीआरपीसी के तहत सीमा की अवधि की गणना करने के प्रयोजन के लिए, प्रासंगिक तारीख शिकायत दर्ज करने की तारीख या अभियोजन की संस्था की तारीख है न कि जिस तारीख को मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेता है। उच्च न्यायालय ने यह मानने में मौलिक त्रुटि की है कि संज्ञान लेने की तारीख यानी ४-१२-२०१२ मामले के लिए निर्णायक है, जबकि इस तथ्य की अनदेखी की कि लिखित शिकायत वास्तव में १०-७ को अपीलकर्ता द्वारा दायर की गई थी, अपराध की तिथि अर्थात 4-10-2009 के संदर्भ में 3 वर्ष की सीमा अवधि के भीतर।"

16. मामले में शिकायत 11.08.2011 की घटना के लिए 13.02.2012 को दायर की गई थी, अर्थात केवल चार महीने बाद, अर्थात तीन वर्षों के भीतर, इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ वकील का तर्क कि चूंकि विद्वान क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट ने पांच साल के बाद संज्ञान लिया, इसलिए यह सीआरपीसी की धारा 468 के तहत प्रावधानित सीमाओं से प्रभावित है, यह तर्क विश्वासनीय नही है, जैसा कि **जापानी साहू** मामले (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय अनुपात और **अमृतलाल** मामले (सुप्रा) के मद्देनजर है और इस तरह, अकेले उक्त आधार पर, आदेश को रद्द नहीं किया जा सकता है।

17. अब, जहाँ तक दुर्भावनापूर्ण अभियोजन की दलील का सवाल है, ऐसा प्रतीत होता है कि इस मामले को दर्ज करने से पहले, याचिकाकर्ता की बेटी ने अपने पति/ओपी नंबर 2 के खिलाफ आईपीसी की धारा 498-ए और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत अपराध दर्ज कराया था । ओपी नंबर 2, 2011 से लंबित जमानत रद्द करने के मामले में ट्रायल कोर्ट में पेश नहीं हुआ। उसने यह भी आरोप लगाया कि उसने वर्ष 2012 में दूसरी शादी कर ली है।

याचिकाकर्ता ओपी संख्या 2. इस मामले के तथ्य भी प्रथम दृष्टया आईपीसी की धारा 504 और 506 के तहत कथित अपराध के लिए कोई मामला साबित नहीं करते हैं , क्योंकि शिकायत में आरोपों का वर्णन आईपीसी की धारा 504 और 506 के तहत अपराध के लिए प्रथम दृष्टया मामला स्थापित करने के लिए बुनियादी कानूनी तत्वों को शामिल करने में विफल प्रतीत होता है। इसलिए, भजन लाल मामले (सुप्रा) के दिशानिर्देश संख्या 1 और 7 का मार्गदर्शक नोट लेते हुए , विद्वान अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट – III, बिहारशरीफ, नालंदा द्वारा शिकायत वाद संख्या 1175 (सी) 2012 में याचिकाकर्ता के रूप में संज्ञान लेने वाला दिनांक 11.02.2016 को पारित किया गया आदेश और इसके परिणामस्वरूप होने वाली सभी कार्यवाहियों को समाप्त और रद्द किया जाता है।

18. आवेदन स्वीकार किया जाता है।

19. इस निर्णय की एक प्रति तत्काल विद्वान निचली अदालत को भेजी जाए।

(चंद्र शेखर झा, न्यायमुर्ति)

राजीव/–

खंडन (डिस्क्लेमर)– स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।